फिल्म बनाने के काम को मोटामोटी तीन भागों में बाँटा जा सकता है – लिखना, फिल्माना और फिल्माए गए दृश्यों को जोड़ना। फिल्म की कहानी का फिल्मांकन यानी शूटिंग का स्टूडियो के बाहर होना बड़े झमेले और मेहनत का काम होता है। पिछले पच्चीस बरसों में मुझे फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में भारत के कई हिस्सों में जाना पड़ा। शूटिंग में झमेला क्या होता है यह एक किस्से से जानते हैं...

– सत्यजीत रे

ऊँट बनाम रेलगाड़ी

सोनार केल्ला (सोने का किला) फिल्म में ऊँट को लेकर एक मज़ेदार घटना है –

रहस्य-रोमांच वाले उपन्यास लेखक लालमोहन गांगुली और जटायु का सपना रेगिस्तान में ऊँट की सवारी करने का है। कथा के अन्त की ओर यह सपना साकार होने का अवसर आता है। किसी षड्यंत्र के चलते जैसलमेर जाने के रास्ते में फेलू की गाड़ी का टायर पंक्चर हो जाता है और फेलू, तोपसे, लालमोहन को वहीं रुके रहना पड़ता है। थोड़ी देर बाद उनको ऊँटों का एक झुण्ड दिखाई देता है। आठ मील दूर रामदेवरा स्टेशन तक पहुँचकर अगर इन्तज़ार करें तो आधी रात वाली ट्रेन उन्हें मिल सकती है। फेलू ने तय किया कि वे ऊँट से स्टेशन तक जाएँगे। फेलू और तोपसे को तो कोई चिन्ता ही नहीं, लेकिन जटायु तो नाम भर के लिए जटायु है। ऊँट को सामने देखते ही उनकी रुह काँप गई। बाप रे, क्या जानवर है! नशेड़ियों की तरह अधखुली और मदहोश आँखें, ऊबड़-खाबड़ कुदाल जैसे दाँत, लटके हुए होंठ उलटकर न जाने क्या चबाते रहते हैं।

और हिंडोला खाते हुए चलता है तो लगता है जैसे सवार की हड्डी-पसली ही अलग हो जाएगी।

लेकिन कोई उपाए भी तो नहीं। फेलू और तोपसे फटाफट ऊँट की पीठ पर चढ़ जाते हैं लेकिन लालमोहन किसी तरह बड़ी मुश्किल से चढ़ पाता है। फेलू ऊँटवालों को आदेश देता है, "चलो रामदेवरा"।

ऊँटों का काफिला चल रहा है और लालमोहन खतरे की घड़ी गिन रहा है। बीच रास्ते में अचानक तोपसे ने देखा कि दूर से एक रेलगाड़ी चली आ रही है। उसको किसी तरह रुकवा लिया तो रामदेवरा में दस घण्टे इन्तज़ार नहीं करना होगा। दौड़ते-दौड़ते ऊँटों का काफिला पटरी के पास पहुँचता है। फेलू जेब से रुमाल निकालकर तेज़ी से हिलाता है लेकिन गाड़ी ज़ोर-से सीटी बजाते हुए सामने से निकल जाती है। मजबूरन उन्हें रामदेवरा के लिए ऊँटों से ही रवाना होना पड़ता है।

ऊँट का अध्याय बस इतना-सा ही है। लेकिन इसे फिल्माने के लिए हमें क्या-क्या न करना पड़ा था, यह जानकर तुम्हें झमेले का कुछ तो अन्दज़ा मिल ही जाएगा।

शूटिंग के लिए जिस स्थान को चुना गया था वहाँ दूर-दूर तक कोई घर-बार न था। चारों तरफ रेत ही रेत और बीच-बीच में सूखी घास और छोटी-छोटी कँटीली झाड़ियाँ।

इसके बीच से गुज़रती मीटर गेज लाइन का ओर-छोर नहीं दिखता था। इस रेलवे लाइन के किनारे-किनारे जैसलमेर जानेवाली पक्की सड़क थी। रेलवे लाइन अगर रास्ते से थोड़ी और दूर होती तो हमारे लिए वहाँ शूटिंग करना सम्भव नहीं होता। ऊँट जब रेलगाड़ी की ओर दौड़कर जाएँगे तब उनके साथ-साथ कैमरे को भी दौड़ना होगा यानी कैमरे को खुली जीप में रखना होगा। यानी रेलवे लाइन के पास पक्की सड़क होना ज़रूरी है।

जोधपुर से जैसलमेर तक के डेढ़ सौ मील के रास्ते को छान मारने के बाद एकमात्र वह ऐसी जगह मिली जहाँ हम जो-जो चाहते थे वह सब कुछ था। वह जगह जैसलमेर से करीब सत्तर मील दूर जोधपुर के रास्ते में थी। ऊँटों का दल वहाँ से सात मील दूर खाची गाँव से आना तय हुआ। ऊँटवालों को हमने कह रखा था कि वे ऊँटों को सजा-धजा कर लाएँ। ऊँटों को जिस निगाह से हम लोग देखते हैं राजस्थान के लोग उस निगाह से बिलकुल भी नहीं देखते हैं। ऊँट देखकर हमें हँसी-सी आती है लेकिन उनको नहीं। क्योंकि ऊँट तो उनके दोस्त हैं, रेगिस्तान का एकमात्र सहारा। इस दोस्त को सजाने का चलन राजस्थान के लोगों में सदियों से है। सुन्दर-सुन्दर झालर, गहने वगैरह उन पर कितने फबते हैं। बहरहाल, ऊँटवालों ने कहा था कि वे दोपहर तक वहाँ पहुँच जाएँगे।

ऊँटों का इन्तज़ाम हुआ तो मामला रेलगाड़ी पर अटक गया। जोधपुर से सुबह एक गाड़ी सत्तर मील दूर पोखरण तक जाती थी। उसी रेलगाड़ी का शूटिंग में इस्तेमाल किया जाएगा, यह हमने तय कर रखा था। पोखरण, जोधपुर और जैसलमेर के बीच में पड़ता है। हमारी पसन्द की जगह पोखरण से बीस मील पश्चिम यानी जैसलमेर की तरफ थी। लेकिन हमें भरोसा था कि रेलवे अधिकारियों से बातचीत करके हम उस ट्रेन को आगे वहाँ तक ले जाएँगे जहाँ शूटिंग होनी थी।

हमने शूटिंग का सारा इन्तज़ाम कर लिया था। बस दिन तय करना बाकी था। तभी पता चला कि कोयले का दाम बढ़ जाने के कारण रेलवे ने दिन में जाने वाली उस गाड़ी को रद्द कर दिया है। अब तो सर्वनाश हो गया। फेलू की टोली ऊँट पर सवार होकर दौड़ते-दौड़ते आ रही है और वहाँ से गुज़रने वाली रेलगाड़ी को रुकवाने की कोशिश करती है – तो क्या मेरी पसन्द का यह दृश्य फिल्म में नहीं रह पाएगा?

उसी दिन मैंने रेलवे-अधिकारियों से मुलाकात की और उन्हें पूरा मामला समझाया। हमारा सौभाग्य था कि वे मान गए। एक पूरी रेलगाड़ी हमें दे दी गई जिसमें थर्ड क्लास, फर्स्ट क्लास मिलाकर कुल छह डिब्बे थे। इसके अलावा गार्ड का डिब्बा, कोयला ले जाने के लिए एक डिब्बा और इन्जिन भी था। तय हुआ कि इसके लिए कोयले का खर्च हमें देना होगा। सच कहूँ तो अभिशाप हमारे लिए वरदान हो गया क्योंकि यह रेलगाड़ी एक तरह से हमारे कब्ज़े में थी – हम इसे आगे-पीछे ले जाएँ, रोकें, चलाएँ जो मर्ज़ी कर सकते थे।

तय हुआ कि हमारे लिए रेलगाड़ी पोखरण स्टेशन पर खड़ी रहेगी। हम लोग जैसलमेर से सौ मील का रास्ता मोटर से जाएँगे। हमारे पहुँचने के बाद रेलगाड़ी शूटिंग की तयशुदा जगह के लिए रवाना होगी। वहाँ फेलू, तोपसे और जटायु हमारे इन्तज़ार में होंगे। जाते समय हम लोग डिब्बे के अन्दर मुकुल और बर्मन को लेकर शूटिंग कर लेंगे। फिल्म में बर्मन मुकुल को लेकर जैसलमेर जा रहा है। वह डिब्बे में ऊँघ रहा है और मुकुल तन्मयता से खिड़की से बाहर का दृश्य देख रहा है।

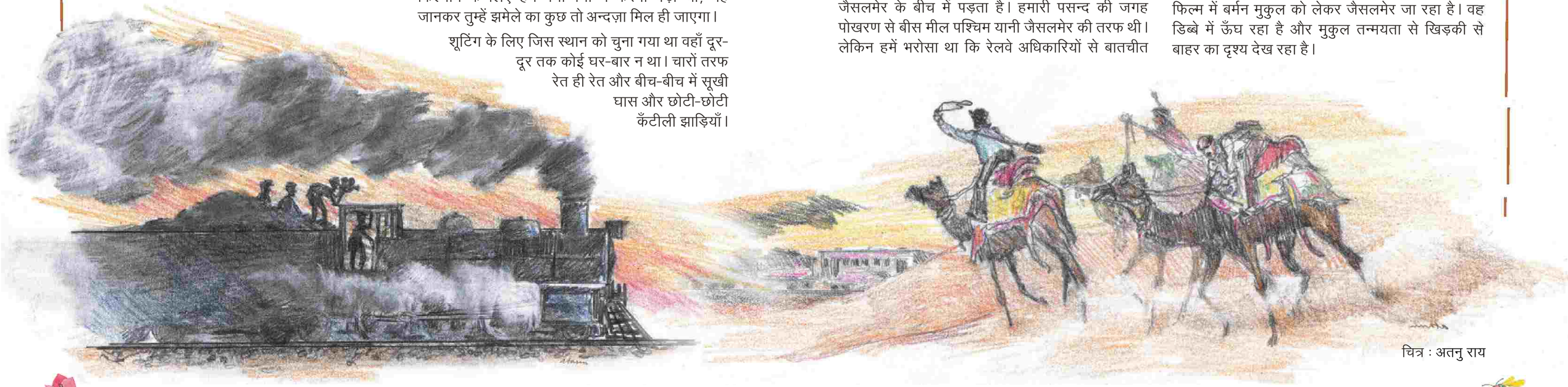

चित्र : अतनु राय

इसके अलावा हमारी इच्छा कोयले वाले डिब्बे से इन्जिन का शॉट लेने की भी थी – सामने चोंगे से काला धुँआ निकल रहा है और उसके आगे बीचों-बीच रेलवे लाइन दूर तक चली गई है।

पहली गड़बड़ी तो पोखरण में ही हो गई। रेलगाड़ी ग्यारह बजे आनी थी और आई ढाई बजे के बाद। जहाँ पहले से हर काम का समय एकदम तय था वहाँ दस-पन्द्रह मिनट भी इधर-उधर हो जाएँ तो परेशानी हो जाती है। और यहाँ तो तीन-साढ़े तीन घण्टे का मामला था। इसको लेकर बहस करते तो और समय खराब होता इसलिए हम लोग झटपट माल-असबाब लेकर डिब्बे में सवार हो गए और गाड़ी चल दी।

मुकुल और बर्मन को लेकर डिब्बे के अन्दर की शूटिंग बिना किसी झमेले के हो गई। इसके बाद गाड़ी को रुकवाकर हम तीन जने कोयले वाले डिब्बे में सवार हो गए। वहाँ कोयले के पहाड़ के सिवा कुछ न था। इसलिए हम उसी पर खड़े रहे। हाथ में कैमरा लेकर जब तैयार हो गए तो गाड़ी दुबारा चलवाई गई। धीरे-धीरे रेलगाड़ी की गति बढ़ती गई और इधर कैमरे भी चालू कर दिया गया। इन्जिन में ड्राइवर के अलावा भी एक आदमी रहता है। उसे स्टोकर कहते हैं। उसका काम होता है एक बड़े-से बेलचे से कोयला बॉयलर (इन्जिन की भट्ठी जिसमें कोयला जलाया जाता) में डालना। कोयला डालते ही आग धू-धू करके भड़क उठती है और उसके साथ ही चोंगे से भक-भक करके काला धुँआ निकलता है।

मेरे हाथ में कैमरा था। कोयले के ढेर पर खड़े होकर मैंने कुहनियों को इन्जिन की छत पर टिकाया और फिल्म उतारने लगा। इसी दौरान पता नहीं कैसे पैरों के खिसकने से मेरा सन्तुलन गड़बड़ा गया। शॉट लेने के बाद समझ में आया कि दरअसल स्टोकर बाबू ठीक मेरे पैरों के नीचे से कोयला निकाल रहे थे। पैरों तले ज़मीन खिसकने का मतलब तभी मैं समझा।

कोयले वाले डिब्बे में बैठे-बैठे हम ऊँटों के साथ शूटिंग वाली जगह पर पहुँचे। ऊँटों समेत पूरा दल बेसब्री से हमारा इन्तज़ार कर रहा था। वहाँ सब कुछ था। हम बस उसे ही पकड़कर नहीं रख पाए जिसके बिना शूटिंग नहीं हो सकती थी – सूरज की रोशनी। पश्चिम क्षितिज पर सूरज मामू का आधा शरीर झाँक रहा था। कैमरे को ठीक-ठाक करने तक में वे पूरी तरह विलीन हो जाएँगे, इसमें कोई सन्देह नहीं था।

रेलगाड़ी, ऊँट सबको वापस भेज दिया गया। लेकिन जाने से पहले यह तय हुआ कि सभी लोग कल दोपहर ढाई बजे इसी जगह पर मिलेंगे। रेलगाड़ी भी पोखरण में हमारा इन्तज़ार नहीं करेगी, सीधे यहीं चली आएगी।

हमने जैसलमेर में डेरा डाल रखा था। मुकुल के सोने के किले से आधे मील दूर छोटे-मोटे महल की तरह के एक गेस्टहाउस में तीस-पैंतीस लोगों के रहने और खाने-पीने का इन्तज़ाम हुआ था। अगले दिन भोर में भी पहले किले के भीतर शूटिंग करने गए। करीब तीन घण्टे वहाँ पर हमने फिल्म के अन्तिम दृश्य के कुछ शॉट लिए। उसके बाद जल्दी-जल्दी दोपहर का भोजन करने के बाद हम ढाई बजे तक ऊँटवाली शूटिंग की जगह पर हाज़िर हुए।

सोनार किला

सत्यजीत रे

ऊँटों का दल वहाँ पहले से ही मौजूद था। केवल रेलगाड़ी के आने का इन्तज़ार था। आसमान को देखकर लगा कि कल की गड़बड़ी एक बार फिर वरदान साबित हुई। आज सफेद और मटमैले बादलों के टुकड़े आसमान में छाए हुए थे और उनके बीच से सुनहली धूप मरुस्थल पर पड़ रही थी। किसी नाटकीय दृश्य के लिए ऐसी रोशनी बहुत ज़रूरी थी।

आज रेलगाड़ी भी एकदम समय पर आ पहुँची थी। उसके आने तक सभी का दिल धक-धक कर रहा था क्योंकि कल सुबह हमें जैसलमेर छोड़कर जोधपुर जाना था। छुक-छुक की आवाज़ सुनकर सभी ने एक साथ राहत की साँस ली।

रेलगाड़ी के रुकते ही हमने ड्राइवर को पूरा मामला समझा दिया। उसे एक चौथाई मील पीछे लौटना होगा और वहाँ से रेलगाड़ी फिर हमारी तरफ आएगी। हम समय के अन्दाज़ से सवारी सहित ऊँटों के दल को रवाना कर देंगे। कैमरा खुली जीप में रखा होगा और पक्की सड़क पर जीप को ऊँटों के दल के साथ रेलगाड़ी की और दौड़ाया जाएगा।

ड्राइवर को हमने सब कुछ समझा दिया था। केवल एक बात बताना भूल गए। उसका नतीजा यह रहा...। रेलगाड़ी आ रही थी, ऊँट भी चल दिए थे। कैमरा भी दौड़ रहा था। जैसे ही गाड़ी ऊँटों के दल के नज़दीक आई तो फेलू ने अपनी जेब से रुमाल निकालकर हिलाना शुरू कर दिया। इतने में ड्राइवर ने खच्च से ब्रेक लगाया और गाड़ी रुक गई। ड्राइवर से जब कारण पूछा तो उसने कहा, "बाबू ने ही तो रुकने का इशारा किया था।" क्या करते! गलती तो हमारी ही थी। रेलगाड़ी को, ऊँटों को, फेलू, तोपसे, लालमोहन को, जीप, कैमरा सब को एक-चौथाई मील पीछे ले जाया गया। इस बार निश्चित ही कोई गड़बड़ी नहीं होनी थी।

रेलगाड़ी ने चलना शुरू किया। वह जब पहुँचने ही वाली थी तो ऊँटों के दल को इशारा कर दिया गया। जीप को धकेलने के लिए सब लोग कतार में खड़े थे। अचानक सबके पसीने छूट गए।

कैमरा चालू करने के लिए "स्टार्ट" बोलने ही वाला था कि ज़ुबान अटक गई। रेलगाड़ी तो आ रही थी, मगर धुँआ कहाँ था? इस मरुप्रदेश के विशाल आसमान में रेलगाड़ी का काला धुँआ फैल रहा है – अगर ऐसा न हो तो दृश्य जमेगा कैसे? रोका-रोको, गाड़ी रोको, ऊँट रोको, जीप रोको!

हमारी टोली के सभी लोग रेलगाड़ी की ओर दौड़ पड़े, रोको, रोको!

रेलगाड़ी ने खच्च से फिर ब्रेक लगाया।

असल में स्टोकर बाबू शूटिंग देखने के लिए इतने उत्सुक थे कि बॉयलर में कोयला डालना ही भूल गए थे। धुँआ कहाँ से निकलता? इस बार लेकिन कोयला देना ही होगा। अब अगर गलती हुई तो सुधार की गुँजाइश न रहेगी क्योंकि तब तक सूरज ढल चुका होगा। स्टोकर की मर्ज़ी पर भरोसा न करके इस बार हमने अपने एक आदमी को इन्जिन में बिठा दिया।

फेलू, तोपसे और जटायु ऊँट पर सवार होकर तय स्थान पर खड़े हो गए। तीन बार शॉट लेने का एक फायदा यह हुआ कि सवारों को दम निकला जाने का अभिनय नहीं करना पड़ेगा। जटायु की हालत तो ऐसी थी कि किसी तरह जान छूटे।

तीसरी बार दृश्य सही तरह से फिल्मा लिया गया।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि उस दिन का काम खत्म हुआ। आज रात को दस बजे हमें दुबारा इस रेलगाड़ी की ज़रूरत होगी। रामदेवरा स्टेशन का दृश्य! आधी रात को जैसलमेर जाने वाली गाड़ी आती है। फेलू, तोपसे और लालमोहन उसमें चढ़ते हैं और...

यह एक और ही अध्याय है।

अनुवादः संजय भारती